'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' 'अमृतचन्द्राचार्य' कृत, आठवीं गाथा। ७ गाथा हो गयी है। **तो श्रोता कैसे गुणवाला होना चाहिए?** इसकी व्याख्या है। यह उपोद्घात / भूमिका है, इसकी अन्तिम गाथा है।

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्यतत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः।।८।।

वक्ता का लक्षण कह गये कि वह मुख्य और उपचार, अर्थात् निश्चय और व्यवहार का यथावत् जाननेवाला (होना) चाहिए, तो वह शिष्य के अज्ञान को दूर कर सकता है; दूर करने में निमित्त होता है। यहाँ अब, सुननेवाले को भी निश्चय-व्यवहार का ज्ञान चाहिए। यदि एक पक्ष में खिंच जाए तो जब निश्चय का विषय आवे, तब उसे ही पकड़ ले और व्यवहार होता ही नहीं — ऐसा माने तो भी मिथ्या; और व्यवहार की बात आवे, वहाँ व्यवहार के काल में निश्चय होता ही नहीं - ऐसा माने - उस एक पक्ष में चला जाए तो उसे निश्चय-व्यवहार के बिना सच्चा श्रोतापना प्रगट नहीं होता। समझ में आया?

www.vitragvani.com

जो जीव, व्यवहारनय और निश्चयनय का.... व्यवहार अर्थात् भेदरूप, रागरूप परिणति-पर्याय, प्रवृत्तिरूप, वह व्यवहारनय; निश्चयनय-स्वरूप के सन्मुख निश्चय चैतन्यस्वरूप स्वभाव अभेद के सन्मुख दृष्टि, वह निश्चय — ऐसे **वस्तुस्वरूप से... 'तत्त्वेन'** दोनों वस्तु स्वरूप है। निश्चय स्वभावसन्मुख होना और रहना तथा व्यवहार भेदरूप प्रवृत्ति-परिणति अन्दर होती है, वह भी उस काल में होती है। इन दोनों को **वस्तुस्वरूप से... 'प्रबुध्य' यथार्थरूप से जानकर....** यथार्थ अर्थात् जैसे निश्चय है, वैसे निश्चय को जाने और व्यवहार है, वैसे व्यवहार को जाने। **'मध्यस्थ भवति'** मध्यस्थ अर्थात् दोनों है; एक ही है और दूसरा नहीं है — ऐसा नहीं है। दोनों को भलीभाँति जानता है, उसे यहाँ मध्यस्थ कहा जाता है। निश्चय के समय व्यवहार भी है और व्यवहार के समय निश्चय भी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों समकक्ष हुए न?

उत्तर : समकक्ष वस्तु नहीं? वर्तमान है नहीं? सन्मुखता किसकी? ये दोनों बातें एकसाथ हैं या नहीं? निश्चयसन्मुख द्वारा दृष्टि हुई, परन्तु उस काल में व्यवहार है या नहीं? व्यवहार है, वहाँ निश्चय सन्मुख दृष्टि है या नहीं? दोनों है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक ही पक्ष कहे कि निश्चयसन्मुख से ही वस्तु है और भेदरूप वस्तु व्यवहार नहीं तो एक पक्ष हो गया। वह वस्तु यथार्थ नहीं समझ सकता; और व्यवहार की प्रवृत्ति की, परिणति की, राग की बात आवे, उसे ही जाने और उस समय में निश्चयसन्मुख दृष्टि नहीं होती — ऐसा जाने तो वह भी पक्ष में हो गया। इस तरह व्यवहार-निश्चय एकसाथ में होते हैं, इसका उसे मध्यस्थपना नहीं रहा। कहो, समझ में आया?

अर्थात् निश्चयनय और व्यवहारनय के पक्षपातरहित होता है.... अर्थात् क्या? एक ही होता है और दूसरा नहीं — ऐसा नहीं होता, ऐसा। समझ में आया? निश्चय होवे और व्यवहार न हो; व्यवहार ही होवे और निश्चय न हो — ऐसा नहीं होता। **पक्षपातरहित होता है। वह ही शिष्य, उपदेश का 'अविकलं' सम्पूर्ण फल 'प्राप्नोति' प्राप्त करता है।** दो यथार्थरूप से तत्त्व से जाने, लक्ष्य में हो तो वह यथार्थ तत्त्व के फल को प्राप्त कर सकता है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : व्यवहार अर्थात् उपयोग।

उत्तर : व्यवहार है उपयोग। उपयोग अर्थात् है या नहीं? व्यवहार, उसके भेद के काल में व्यवहार, एक कोई निश्चित व्यवहार है या नहीं? परिणति भेदरूप, रागरूप, गुणस्थानरूप — ऐसा भेद है या नहीं? बस! इतना ही। समझ में आया? उसे न माने तो उसे निश्चय का-तत्त्व का पता नहीं है; और निश्चय को अकेले को माने तो यह व्यवहार ऐसा है, उसे न माने तो अकेला निश्चयाभासी होता है। है - ऐसा कहते हैं, दोनों है। आश्रय करने योग्य भी निश्चय है और यह जानना, इसके पश्चात् भी दोनों हैं, इतनी बात। समझ में आया? पहले आ गया न निश्चय का? प्रायः भूतार्थ बोध विमुख, वह व्यवहार और भूतार्थ बोध सन्मुख, वह निश्चय। भूतार्थ त्रिकाल ज्ञायकभाव चैतन्यस्वरूप सन्मुख, वह निश्चय और उसमें रहा हुआ परसन्मुख का भेदरूप भाव, रागरूप भाव परिणति, जो अपूर्ण आदि ऐसा भाव, उसे रत्नत्रय की परिणति वर्तमान भेदरूप कहो! वह भी है न? अकेला निश्चय है और व्यवहार नहीं — ऐसा है नहीं; तथा व्यवहार ही अकेला है और निश्चय नहीं — ऐसा नहीं; दोनों है। समझ में आया?

वह ही शिष्य, उपदेश का.... 'अविकलं' अर्थात् पूर्ण; विकल अर्थात् अपूर्ण, अविकल अर्थात् सम्पूर्ण। ऐसे फल को अर्थात् सच्चे **फल प्राप्त करता है।** निश्चय का फल मोक्ष है। व्यवहार... है - ऐसा जो जानता है, उसे वास्तविक तत्त्व का फल मिलता है। कहो, समझ में आया इसमें? व्यवहार अभूतार्थ है, यह तो कह दिया। निश्चय भूतार्थ है-यह तो कहा, दोनों हैं — ऐसा यहाँ कहेंगे। निश्चय वस्तु भूतार्थ चैतन्यस्वरूप आत्मा का आश्रय करना वह मूल चीज (है), परन्तु ऐसा आश्रय लेने पर भी, उसकी पर्याय में भेदरूप अपूर्णता रह गयी; राग है, वह है — ऐसा उसे भलीभाँति जानना तो चाहिए। नहीं (है) — ऐसा कहे तो अकेला निश्चय का पक्ष हो गया। अकेला व्यवहार कहे तो व्यवहार का अकेला पक्ष हो गया, निश्चय रहा नहीं। ऐसे श्रोता सुनने के योग्य नहीं है — ऐसा कहते हैं। श्रोता का पूरा वजन है। समझ में आया?

उसे दो नयों का थोड़ा-बहुत भी ज्ञान होना चाहिए। वक्ता को बहुत हो, इसे थोड़ा हो। क्योंकि दो वस्तु (नय) है — ऐसा इसे जानना चाहिए या नहीं? निश्चय भी जानना

www.vitragvani.com

है और व्यवहार हो, उसे भी मानना तो है। है ऐसा मानना नहीं? व्यवहार से निश्चय होता है — यह फिर अलग वस्तु हुई। यह कहीं व्यवहार माना नहीं कहलाता। समझ में आया? व्यवहार से निश्चय हो, तब तो दोनों एक हो गये, दो अलग रहे नहीं। दो हैं — ऐसा इसे भलीभाँति जानना चाहिए। सुननेवाले श्रोता को निश्चय और व्यवहार का यथार्थ वस्तु के स्वरूप में जैसा है, उस प्रकार उसे लक्ष्य में लेना चाहिए और मध्यस्थ होना चाहिए। मध्यस्थ अर्थात् अकेला निश्चय का ही पक्ष खींचना और व्यवहार है ही नहीं; और व्यवहार का ही अकेला पक्ष खींचना और निश्चय का आश्रय होता ही नहीं — वह दोनों नयों को नहीं समझता। समझ में आया? यह अटपटी बात है।

मुमुक्षु : थोड़ा ढीला पड़ा।

उत्तर : कहीं ढ़ीला पड़ा नहीं जरा भी। व्यवहार, व्यवहार के (स्थान पर है)। यहाँ तो दोनों साथ लेना है न? मिथ्यादृष्टि को एक भी नहीं है; केवली को एक भी नहीं है। मिथ्यादृष्टि को नहीं निश्चय, नहीं व्यवहार। केवली को नहीं निश्चय, व्यवहार, तो वस्तु पूर्ण अखण्ड हो गयी। यहाँ नय के ज्ञान की बात चलती है या नहीं? नय की। केवली नयातीत हो गये; मिथ्यादृष्टि को नय है नहीं, होते ही नहीं। अब जिसे नय का ज्ञान करना है और जिसे नय का क्या स्वरूप है — ऐसा जिसे जानना है, ऐसे श्रोता को, निश्चयनय का आश्रय, वह भी है और उस काल में भेदरूप भाव भी है — इसका ज्ञान बराबर रखना चाहिए। मूल तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

व्यवहार की जहाँ बात आवे, व्रत पालना और उनके अतिचार टालना और उसका ऐसा करना और... तो जानना कि यह व्यवहार है, परन्तु उस समय वह ही है और अन्य निश्चय नहीं (-ऐसा नहीं है।) स्वसन्मुख हुआ ज्ञाताभाव है, उसमें ऐसा व्यवहारभाव है — ऐसा न जाने तो अकेला व्यवहार का पक्ष करके निश्चय को भूल जाता है। निश्चय का जहाँ अकेला है ज्ञाता-दृष्टापना स्वसन्मुख का; वहाँ आगे व्यवहार से बात आवे कि व्रत पाले, व्रत का राग उसे होता है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति होती है, देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान-परद्रव्य का बहुमान करता है। करता है — ऐसा व्यवहार होता है। वह व्यवहार ऐसा होता है — यह न माने, परन्तु अकेला निश्चय माने तो व्यवहार रहा कहाँ? निश्चय पूर्ण कहाँ हुआ? वीतराग तो हुआ नहीं। समझ में आया?

www.vitragvani.com

व्यवहार के स्थान में व्यवहार का यथावत् माने और निश्चय स्व–आश्रय करने योग्य है, वह वस्तु यथावत जाने। दोनों में से एक को न माने तो एक भी नय नहीं रहता। नय नहीं रहता तो साधकपना नहीं रहता। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों को जाने बिना सीधा अन्दर न जाए।

उत्तर : जाए नहीं, किस प्रकार जाए? किसका जाए? स्व का आश्रय करना, वह निश्चय है और उस समय जो भेद रह जाता है... पूर्ण कहाँ होता है? इसलिए इसे उसको जानना चाहिए। एकदम कहाँ सीधा जाता था? किसमें ज्यादा भी जाए? जाए तो भी अभी भेद तो बाकी रहेगा। चौथा, पाँचवाँ, सातवाँ (गुणस्थान) भेद रहेगा या नहीं? भेद है, उसे भलीभाँति जानना चाहिए। ज्ञान में **'तत्त्वेन'–** ऐसा कहा है न? देखो न! **वस्तुस्वरूप से....** यह वस्तु का स्वरूप है। अभेद भी वस्तु का स्वरूप है और उस काल में भेद भी उस काल में पर्याय का वस्तु स्वभाव है। दोनों को भलीभाँति जानना। आदरना एक, जानना दोनों।

मुमुक्षु : निश्चयपूर्वक व्यवहार....

उत्तर : हाँ; निश्चयपूर्वक व्यवहार। व्यवहार अर्थात् पर्याय का भेद है, वह व्यवहार, ऐसा। आदरणीय है या — यह बात / प्रश्न नहीं है। इस निश्चय के स्व–आश्रय तत्त्व में तो भेद है ही नहीं। अब इसकी पर्याय में भेद है या नहीं? वह इसे नहीं जाने तो अकेला अभेद कहाँ रहा? निश्चय रहा नहीं; और अकेले निश्चय को–अभेद को जाने तथा भेद है तो अवश्य वर्तमान में; पूर्ण वीतराग हुआ नहीं। उसे भलीभाँति जानना चाहिए — ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'यः व्यवहारनिश्चयौ तत्त्वेन प्रबुध्य मध्यस्थः भवति' – जो जीव व्यवहारनय और निश्चयनय के.... 'तत्त्वेन' का अर्थ किया। **यथार्थरूप से जानकर....** ऐसा। मध्यस्थ अर्थात् **पक्षपातरहित होता है....** यह मध्यस्थ की व्याख्या है। **पक्षपातरहित होता है....** अर्थात् निश्चय है और व्यवहार नहीं; व्यवहार ही है और निश्चय नहीं — ऐसा जो पक्षपातरहित होता है अर्थात् दोनों हैं। निश्चय है, व्यवहार है; स्व के आश्रय में स्व की व्यवहार पर्याय की परिणति भेद वर्तमान भाव, वह सब है। इसमें भलीभाँति पक्षपातरहित

www.vitragvani.com

होता है, वह शिष्य.... बहुत सरस उपोद्घात किया है, ८ गाथा में तो; ८ गाथा तो अपने बहुत विस्तार से आ गयी। समझ में आया? यह उपोद्घात है ८ गाथा। फिर ग्रन्थ का प्रारम्भ नौवीं गाथा से शुरु होता है। समझ में आया?

वह ही शिष्य, उपदेश का सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है। अर्थात् उपदेश का फल जो वीतरागता है, वीतरागता है, वह स्व के आश्रय से, तत्त्व के आश्रय से सम्यक् यथार्थ वस्तु है और पर का आश्रय भेद आदि जितना बाकी रह जाता है, वह भी है — ऐसा जो जानकर, उसकी पूर्णता वीतरागता के फल को पाता है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ : श्रोता में अनेक गुण होने चाहिए... सुननेवाले में अनेक दूसरे गुण भी होते हैं। **परन्तु व्यवहार और निश्चय को जानकर...** यह तो मूल चीज है-अभेद और भेद। समझ में आया? एकरूप और अनेक। व्यवहार में अनेकपने की पर्याय दिखे, निश्चय में एकरूप हो - ऐसा वस्तु का स्वरूप है। तो कहते हैं कि उसे **व्यवहार और निश्चय को जानकर एक पक्ष का हठाग्रहीरूप न होने का....** निश्चय ही होता है और उस काल में व्यवहार होता ही नहीं; व्यवहार ही होता है और उस काल में निश्चय नहीं होता। व्यवहार की बातें हो व्रत पालो, ऐसा करो, दया करो, दान करो, पर की रक्षा करो — ऐसी भाषा आवे, लो! समझ में आया? परन्तु उसका अर्थ समझे अर्थात् पर के लिये दया का भाव आया है, ऐसे यहाँ राग रक्षा है — ऐसा कहते हैं। उस समय निश्चय को न भूले। निश्चय में तो स्व का अभेद ही है। पर की ओर का राग उस निश्चय में है नहीं। समझ में आया?

व्यवहार की बात आवे (कि) मुनि को, देखकर चलना, साढ़े तीन हाथ ऐसे नजर रखकर (चलना), चींटी दिखायी दे तो पैर को ऐसे ऊँचा करना, जीव के आगे पैर ऊँचा करना — ऐसा उपदेश आता है। वह किसलिए? उस प्रमाद का भाव टालने के लिये राग की शुभदशा होती है, उसे बताते हैं। उस समय निश्चय को नहीं भूले। वह जड़ की क्रिया कर सकता है — ऐसा न भूले कि नहीं; वह नहीं कर सकता। समझ में आया? निश्चय में कर नहीं सकता; इसलिए व्यवहार में ऐसा आया कि तू कर सके, परन्तु कर सकने का ऐसा अर्थ (है) कि उसे राग की मन्दता ऐसी होती है — ऐसा उसे व्यवहार जानना

www.vitragvani.com

चाहिए। शरीर का कर सकता है, काम कर सकता है — ऐसा उसके अर्थ में से नहीं लेना। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में ८ गाथा में तो बहुत सरस! निश्चय-व्यवहार के वर्णन की टीका भी बहुत सरस की है। दृष्टान्त देते हैं। यह (समयसार की) १२ वीं गाथा में आता है न?

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहार णिच्छए मुअह।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं, अण्णेण पुण तच्चं।।

यदि तू जिनमत में प्रवर्तन करता है.... प्रवर्तता है न अभी तो? परिणति में प्रवर्तता है। **तो व्यवहार और निश्चय को मत छोड़।** व्यवहार नहीं है - ऐसा मत मान; निश्चय नहीं है - ऐसा मत मान; दोनों हैं - ऐसा मान, दोनों हैं - ऐसा जान। कहो, समझ में आया? **यदि निश्चय का पक्षपाती होकर....** अकेला निश्चय का-अभेद का पक्षपाती होकर, हों! भलीभाँति जानकर हो, तब तो उसे व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होवे। निश्चय का-अकेले अभेद का पक्षपाती होकर **व्यवहार को छोड़ेगा....** वर्तमान रत्नत्रयरूप धर्मतीर्थ की परिणतिरूप पर्याय जो है... समझ में आया? रत्नत्रयरूप परिणति जो पर्याय, जो पर्याय है, वही व्यवहार है। द्रव्य है, वह निश्चय है, द्रव्य है, वह भूतार्थ है; पर्याय है, वह वास्तव में त्रिकाल स्वरूप नहीं, इस अपेक्षा से अभूतार्थ है, परन्तु पर्याय है तो सही न? समझ में आया? चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान - यह सब व्यवहार है, पर्याय है। व्यवहार अर्थात् पर्याय है। यदि वह पर्याय न हो तो धर्मतीर्थ ही नहीं रहे, पर्याय का साधन नहीं रहे। केवलज्ञान को साधने की शुद्ध परिणति, वह भी एक व्यवहार है। समझ में आया? निश्चय तो निष्क्रिय तत्त्व है। एकरूप स्वभाव, जिसमें परिणति भी नहीं — ऐसा ध्रुवपना तत्त्व का, वह निश्चय है। समझ में आया?

व्यवहार को छोड़ेगा तो रत्नत्रयस्वरूप धर्मतीर्थ का अभाव होगा। तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप तीन परिणति है, वह सब व्यवहार है; पर्याय स्वयं व्यवहार है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र — ऐसी जो पर्याय, अवस्था, परिणति, त्रिकाल अभेद का एक अंश भेद, वह व्यवहार है। उसे छोड़ेगा तो परिणति रहेगी कहाँ? समझ में आया? व्यवहार है, वह तिरने का उपाय है, वह पर्याय है — ऐसा कहते हैं। पर्याय है, वह

www.vitragvani.com

पूर्ण केवलज्ञान को प्राप्त करने का कारण है। वह पर्याय है, वह पर्याय स्वयं व्यवहार है। समझ में आया?

द्रव्य स्वयं निश्चय है और पर्याय स्वयं व्यवहार है। ऐसी दो वस्तु है या नहीं? ऊपर कहा न? **'तत्त्वेन'** — ऐसा कहा था। समझ में आया? गड़बड़ ही इसमें है न बड़ी? रत्नत्रयस्वरूप, व्यवहार से रत्नत्रयस्वरूप होता है। उससे होता है - यह यहाँ प्रश्न नहीं है। होता है तो त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से होता है; परन्तु हुई पर्याय, वह व्यवहार है। यदि वह व्यवहार न हो तो परिणति निर्मल हो सकती नहीं। साथ में रागादि व्यवहार (है), वह भी व्यवहार है। समझ में आया? शुद्धपरिणति, सद्भूत परिणति है। उसकी अपनी व्यवहार परिणति है; रागादि है, वह असद्भूत परिणति है। है या नहीं? समझ में आया? देव-गुरु-धर्म का, देव-गुरु-शास्त्र का आदर करना... कहो, ऐसा विकल्प है या नहीं? उसके ज्ञान में यह है या नहीं? है ऐसा भाव, बस! उसे यथावत् मानना चाहिए।

व्यवहार को छोड़ेगा तो रत्नत्रयस्वरूप धर्मतीर्थ का अभाव होगा... तिरने का उपाय जो है—पर्याय है, वही व्यवहार है - ऐसा कहते हैं। किसके आश्रय से प्रगटे, यह फिर अलग वस्तु (बात) है। यह कहते हैं, देखो! **और यदि व्यवहार का पक्षपाती होकर....** अकेली परिणति और पर्याय का ही पक्षपाती होकर **निश्चय को छोड़ेगा तो शुद्ध तत्त्वस्वरूप का अनुभव नहीं होगा।** तो यह निर्मल पर्याय, तत्त्व के आश्रय से होती है; तत्त्व का आश्रय छोड़ेगा तो फिर रहेगा कहाँ? आहा...! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अभेद वस्तु का आश्रय छोड़ेगा, निश्चय तत्त्व को छोड़ेगा तो उसके आश्रय से तो अनुभव है, उसके आश्रय से तो अनुभव होता है, उसके आश्रय से धर्म होता है। भले ही वह पर्याय है व्यवहार, परन्तु होती है द्रव्य के आश्रय से न? समझ में आया? ऐसी बड़ी गड़बड़ करते हैं।

अभूतार्थ भी विषय है या नहीं? व्यवहारनय जाननहार है तो उसका कोई विषय है या नहीं? नय विषयी है, उसका विषय है या नहीं? विषय है — ऐसा भलीभाँति इसे जानना चाहिए - ऐसा कहते हैं। नहीं जानेगा तो वह परिणति सिद्ध नहीं होगी। अकेले

www.vitragvani.com

व्यवहार को जानेगाा तो निश्चय तत्त्व के आश्रय बिना अनुभव नहीं होगा। यह शुद्ध परिणति भी निश्चय के आश्रय से होती है। समझ में आया?

यहाँ तो जिसे आत्मा के यथार्थ फल को प्राप्त करना है, यथार्थ सुनना है, उस जीव की बात करते हैं। पक्षपात / आग्रह करके पड़े कि देखो! आया या नहीं? इससे होता है या नहीं? व्यवहार–रत्नत्रयरूप धर्म ही व्यवहार से होता है। इसलिए होता है व्यवहार से नहीं; है वह व्यवहार है; होता है अन्तर द्रव्य के आश्रय से। समझ में आया? परन्तु अन्दर अभी अपूर्ण पर्याय रही, राग रहा; अभी शुद्धता अपूर्ण है। यह शुद्ध परिणति की भी सक्रियदशा है, वह व्यवहार है, भेद है। उसे न माने तो वह वस्तु ही सिद्ध नहीं होती। निश्चय नहीं माने तो जिसके आश्रय से अनुभव करना है, वह तत्त्व ही नहीं रहता। समझ में आया?

मुश्किल से समय मिला, उसमें वापस झगड़े, झगड़ा, झगड़ा। श्रावक को शुद्ध उपयोग नहीं होता — ऐसे लेख (आवें)। शुद्धोपयोग होवे तो फिर केवलज्ञान हो जाएगा। यदि श्रावक को शुद्धोपयोग होवे तो... यह क्या कहते हैं? मोक्ष का मार्ग–तीनों श्रावक को है। इसमें नहीं आया? श्रावक को तीनों है – यह आयेगा। समझ में आया? २०वीं गाथा में है, देखो! २०वीं, २० वीं '**एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्**' देखो! २०वीं गाथा है। श्रावकधर्म की शुरुआत करते हुए २०वीं गाथा है।

एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति॥२०॥

देखो! तीनों हैं, श्रावक को सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों हैं। समझ में आया? इसके बाद समकित की बात करते हैं, समकित की बात करते हैं। २१ में '**तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।**' श्रावक को सम्यग्दर्शन पूरे प्रयत्न द्वारा पहले अनुभव करना चाहिए। '**तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च॥२१॥**' सम्यग्दर्शन होवे तो ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है और चारित्र को चारित्र कहा जाता है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र नहीं होते। समझ में आया? सब श्रावक की बात चलती है।

जो **निश्चय को छोड़ेगा तो शुद्ध तत्त्वस्वरूप का अनुभव नहीं होगा।** वह व्यवहार तो भेद है। अनुभव तो तत्त्व के आश्रय से होता है, अखण्ड–अभेद का आश्रय लेने

www.vitragvani.com

से आत्मा का अनुभव होता है। व्यवहार क्रियाकाण्ड का आश्रय लेकर अनुभव नहीं होता - ऐसा कहते हैं। व्यवहार परिणति का आश्रय लेकर अनुभव नहीं होता; अनुभव तो, अभेद तत्त्व का आश्रय लेकर अनुभव होता है। उसे छोड़ेगा तो अनुभव नहीं होगा; अनुभव नहीं होगा तो परिणति शुद्ध नहीं (होगी); परिणति शुद्ध नहीं तो व्यवहार भी नहीं। यहाँ निश्चय नहीं तो व्यवहार भी नहीं — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

पहले नहीं कह गये थे? स्वसन्मुख होना, वह भूतार्थ है और स्वसन्मुख के अतिरिक्त का 'प्रायः भूतार्थ बोध विमुख' भूतार्थ बोध विमुख, वह सर्व संसार है। अकेला भूतार्थ बोध विमुख अकेला संसार अभिप्राय है; भूतार्थ बोध सन्मुख, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? तो कहते हैं **अतः पहले व्यवहार-निश्चय को भले प्रकार जानकर....** निश्चय का आश्रय करने योग्य है; व्यवहार हो, वह जाननेयोग्य है — ऐसे दोनों को भलीभाँति जानकर... जहाँ-जहाँ उपदेश में बात आवे, वहाँ इस निश्चय की आवे, वहाँ अभेद की आवे, वहाँ राग का कर्ता या परिणति शुद्ध, शुद्धपरिणति करूँ —ऐसा भी वहाँ अभेददृष्टि में विकल्प नहीं है — ऐसा जहाँ कथन आवे, तब उसे अभेद से भलीभाँति समझना और उस काल में भेद का कथन आवे, उसे जानना। मुनि को पंच महाव्रत पालना, अट्ठाईस मूलगुण पालना — ऐसा आवे, लो! कहो! पालने का अर्थ कि ऐसा भाव है न? और वह भाव उससे आगे अशुभ में नहीं जाए — ऐसा शुभ का प्रयत्न भी है न? ऐसे भाव की दशा है, उसे वैसी जानना — इसका नाम व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

पश्चात् यथायोग्य... यथायोग्य अर्थात्? निश्चय को निश्चय आश्रय करनेयोग्य के लिये और व्यवहार को व्यवहाररूप से जानने के लिये। **यथायोग्य इनका अंगीकार करना,....** निश्चय का आश्रय करनेयोग्य अंगीकार करना; व्यवहार को, जाननेयोग्य है — ऐसे अंगीकार करना। समझ में आया?

मुमुक्षु : कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं?

उत्तर : कारण-कार्य-फार्य है नहीं। वह व्यवहार से कारण कहा जाता है, वास्तव में नहीं। है, इतनी बात सत्य है। पूर्ण न हो, वहाँ पर्याय अधूरी है, राग मन्द होता है — इतना इसे व्यवहार को जानना चाहिए। व्यवहार को न जाने तो, तीर्थ का स्वरूप ही भेदवाला है,

www.vitragvani.com

वह नहीं रहेगा; निश्चय को न जाने तो उसके व्यवहार आश्रय से धर्म है नहीं; धर्म तो निश्चय के आश्रय से प्रगट होताा है। यथार्थ प्रगटे, परन्तु तत्त्व के आश्रय से प्रगट होता है। प्रगट हुई दशा अपूर्ण है — ऐसा न जाने तो व्यवहार नहीं रहता और प्रगटना, द्रव्य के आश्रय से है — ऐसा न जाने तो दशा प्रगट नहीं होती। समझ में आया? इस गाथा के अर्थ में बहुत गड़बड़ उठी है।

द्रव्य जो है, वह तो अक्रिय है। अक्रिय अर्थात् परिणति बिना का। वस्तु–आत्मा जो है, वह तो परिणति बिना का द्रव्य है; पर्याय बिना का, उत्पाद–व्यय बिना का (है), उसे अक्रिय कहा जाता है, उसे निश्चय कहा जाता है। वह निश्चय है, उसका आश्रय लेने के लिये; और जितना पर्याय–भेद उत्पन्न होता है, वह सब व्यवहार है। यदि व्यवहार को व्यवहार न जाने तो उत्पाद–व्यय बिना का द्रव्य हो नहीं सकता; व्यवहार बिना का निश्चय नहीं होता। निश्चय को निश्चयरूप से आश्रय न जाने तो उसके आश्रय से प्रगट हुई पर्याय की अपूर्णता, वह भी नहीं हो; इसलिए व्यवहार को व्यवहाररूप से अंगीकार करना, जानना। अंगीकार करना अर्थात् जानना; और निश्चय को निश्चयरूप से अंगीकार करना अर्थात् आश्रय करने योग्य है — ऐसा उसे जानना। कहो, समझ में आया इसमें?

अत: पहले.... पहले, देखो! यह पहले कहा। पहले क्या करना? – ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। पहले व्यवहार–निश्चय को भलीभाँति जानना — ऐसा कहते हैं। लो! प्रथम में प्रथम निश्चय क्या? व्यवहार क्या? उसे जानना चाहिए। यह प्रथम में प्रथम श्रोता तो इतनी योग्यता चाहिए। यदि यह जानने की योग्यता न हो तो कभी समझेगा नहीं। जहाँ निश्चय की बात आयेगी वहाँ परेशान हो जायेगा कि ओहो...! यह तो हो गया तब। व्यवहार की बात आयेगी, तब कहेगा कि यह करनेयोग्य है और इससे मुक्ति होती है; इसलिए यह वास्तविक साधन है — ऐसा मानेगा और स्वभाव–साधन को भूल जाएगा। समझ में आया?

पक्षपात न करना, यही उत्तम श्रोता का लक्षण है। देखा! **यही उत्तम श्रोता का लक्षण है।** उस व्यवहार–काल में, व्यवहार गुणस्थान भेद है, वह सब व्यवहार है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, निश्चय मोक्षमार्ग है और वह तो राग की अपेक्षा से निश्चय

www.vitragvani.com

है, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से तो पर्याय स्वयं व्यवहार है। वह का वह निश्चय और व्यवहार एक द्रव्य में समाहित करना है या नहीं? समझ में आया? पर्यायरूप व्यवहार न माने तो, निश्चय मोक्षमार्ग जो रत्नत्रय है, वही नहीं — ऐसा सिद्ध होगा और निश्चय को न माने तो रत्नत्रय की परिणति (है, वह प्रगट नहीं होगी) — ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

लो! इसमें तो कहा था कि जिसे निश्चय का बोध नहीं और अकेला व्यवहारनय है, वह तो संसार है — ऐसा कहा था। जिसे अकेला निश्चय नहीं है और अकेला व्यवहार है; जिसे निश्चय का-अभेद का ज्ञान नहीं और अकेला भेद, राग और पुण्य आदि का (ज्ञान है), उसे तो सम्यग्दर्शन कहाँ है? ऐसे राग का ही जिसे ज्ञान है, वह तो प्रायः अतिशयरूप से यथार्थबोध से विपरीत, वह अभिप्राय संसार है - ऐसा कहते हैं। वही व्यवहार आदरणीय है - ऐसा है? जाननेयोग्य है-ऐसा कहा, वापस। समझ में आया?

वस्तु एकरूप चैतन्य भगवान अभेद चीज है। उसका अन्तर में आश्रय करना, उससे प्रगट हुई दशा, उस दशा को यहाँ, वर्तमान पर्यायरूप है; इसलिए व्यवहार कहते हैं। उस व्यवहार को-पर्यायरूप को यथावत् पर्यायरूप से जानना और द्रव्य को द्रव्यरूप से निष्क्रिय; उसका आश्रय करने से प्रगट होती है — ऐसे निश्चय को जानना। दोनों में से एक को छोड़ेगा तो एक भी नहीं रहेगा। एक को छोड़ेगा तो एक भी नहीं रहेगा। पर्याय ही नहीं तो द्रव्य नहीं रहे। पर्याय रहित द्रव्य नहीं होता; और द्रव्य नहीं है - ऐसा माने तो द्रव्य रहित पर्याय अकेली नहीं होती। निश्चय नहीं है — ऐसा माने तो अकेली पर्याय रह गयी। व्यवहार नहीं है — ऐसा माने तो अकेला द्रव्य रह गया। समझ में आया?

श्रोता का लक्षण है, उत्तम श्रोता का लक्षण है। (बात) आयी कुछ? (बात) आयी सही या नहीं इसमें? क्योंकि शास्त्र में उपदेश के कथन दो प्रकार के आते हैं। अब दो प्रकार के आवें, उसमें यदि वास्तविकता क्या है और उपचारी कथन क्या है? ऐसे मुख्य और उपचार से बात ली है न? मुख्य और उपचार स्वयं आचार्य यथार्थरूप से जानते हैं, इसलिए शिष्य के अज्ञान को टालते हैं। ऐसे शिष्य भी यदि मुख्य और उपचार, उनके (आचार्य के) जितना भले ही नहीं, परन्तु उसके खास-खास पहले लक्षण से न जाने तो

www.vitragvani.com

वह सुनने का फल नहीं पा सकेगा। जहाँ व्यवहार की बात आयेगी तो कहेगा देखो, व्यवहार आया, देखो, इससे लाभ होगा — ऐसा मानेगा। निश्चय की बात आयेगी, तब कहेगा, देखो! व्यवहार कहाँ है? फिर चाहे जैसे परिणाम हो न, आत्मा को निश्चय का आश्रय हुआ, फिर परिणाम माँस खाने के हो, अमुक खाने को हो, चाहे जैसे हों उसे क्या दिक्कत है? ऐसे व्यवहार को उड़ावे तो वह खोटा है — ऐसा कहते हैं। निश्चय का भान हो, वहाँ ऐसे परिणाम माँस खाने के, शराब पीने के ऐसे भाव उसे नहीं होते। होवें तो सच्चे देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा के, खोटे देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा के त्याग के परिणाम वहाँ होते हैं। ऐसा व्यवहार न माने तो उसे एकान्त निश्चयाभास हुआ है, अतः उसे व्यवहार भी नहीं रहता।

केवल अकेला व्यवहार ही माने, तब तो प्रायः कहा मिथ्यादृष्टि है। अकेले व्यवहार को माने और निश्चय न माने तो व्यवहार भी नहीं रहता। निश्चय नहीं। वह व्यवहार परिणति जहाँ खड़ी हुई है, वह द्रव्य के आश्रय से खड़ी हुई है। अखण्ड अभेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र होते हैं। समझ में आया? गजब बात! छोड़ना नहीं, व्यवहार करना — ऐसा कहकर व्यवहार से तुझे लाभ होगा — ऐसा अर्थ करते हैं। ऐ...ई...! उसका स्पष्टीकरण होना चाहिए न? व्यवहार को छोड़ना नहीं अर्थात् व्यवहार नहीं – ऐसे छोड़ना नहीं। है; नहीं होवे तो पर्याय कहाँ से (आयेगी)? अभी पूर्ण पर्याय हुई नहीं, अभी साधकपने है, व्यवहार बीच में है, उसे व्यवहाररूप से जानना कि ऐसा भाव होता ही है। यह व्यवहार का भाव किसे होता है? जिसे अभेद का आश्रय हुआ, उसे होता है। समझ में आया?

प्रश्न : जो निश्चय–व्यवहार को जाननेरूप गुण वक्ता के बतलाये थे.... आपने तो चौथी गाथा में मुख्य–उपचार कहकर वक्ता का गुण कहा था, चौथी में है न? **'मुख्योपचारविवरण, व्यवहारनिश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्'** ऐसा तो आपने वक्ता का कहा था। **वे ही श्रोता के भी बतला दिये तो इसमें विशेषता क्या हुई?** दोनों समान हो गये। श्रोता और वक्ता समान हो गये। वक्ता का पद ऊँचा है और श्रोता का नीचा — ऐसा भेद तो रहा नहीं, सब समान हो गये।

www.vitragvani.com

उत्तर : जो गुण आधिक्यतारूप से वक्ता में होवें.... जो गुण, निश्चय और व्यवहार की यथार्थता का विशेषरूप हो, **वही गुण हीनतारूप से-थोड़े अंशों में-श्रोता में भी होना चाहिए।** वही श्रोता में थोड़े अंश में होता है; न हो तो वह श्रोता योग्य नहीं है, क्योंकि उसे, कहनेवाले को समझना है। कहनेवाला जो निश्चय-व्यवहार से कहेगा, वैसा उसे थोड़ा भी यदि निश्चय-व्यवहार का लक्ष्य न हो तो श्रोता समझ सकेगा नहीं। **इस प्रकार वक्ता और श्रोता का वर्णन किया।** वक्ता भी मुख्य और उपचार के नय का यथार्थ ज्ञाता चाहिए और श्रोता भी उनका उसकी योग्यता प्रमाण ज्ञाता चाहिए तो भूतार्थ, वह सन्मुख होने योग्य है और अभूतार्थ, वह जाननेयोग्य है — ऐसा ज्ञान को यथार्थ श्रोता पा सके। कहो, समझ में आया?

'**भूमिका समाप्त**' हो गयी। लो! यह आठ गाथा द्वारा तो भूमिका कही। समयसार में बारह गाथा द्वारा कही, यहाँ आठ (गाथा द्वारा कही।)

ग्रन्थ प्रारम्भ

गाथा - ९

अब ग्रन्थ का वर्णन करते हैं। इस ग्रन्थ में पुरुष के अर्थ की सिद्धि का उपाय बतायेंगे। अतः प्रथम ही पुरुष का स्वरूप कहते हैं।

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगन्धरसवर्णैः।
गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः।।९।।

वर्ण–गन्ध–रस–पर्श रहित चेतन स्वरूप है पुरुष अहो।
गुण–पर्याय सहित है व्यय–उत्पाद–ध्रौवय से युक्त अहो।।९।।

अन्वयार्थ : (पुरुषः) पुरुष अर्थात् आत्मा (चिदात्मा) चेतनास्वरूप (अस्ति) है, (स्पर्शरसगन्धवर्णैः) स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से (विवर्जितः) रहित है, (गुणपर्ययसमवेतः) गुण और पर्याय सहित है, तथा (समुदयव्ययध्रौव्यैः) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य (समाहितः) युक्त है।

टीका : 'पुरुषः चिदात्मा अस्ति' – पुरुष है, वह चैतन्यस्वरूप है।

भावार्थ : (पुरु) उत्तम चेतना गुण में (सेते) स्वामी होकर प्रवर्तन करे उसको पुरुष कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, चेतना के नाथ को पुरुष कहते हैं। यही चेतना अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, और असम्भव इन तीन दोषों से रहित इस आत्मा का असाधारण लक्षण है। अव्याप्ति दोष उसे कहते हैं कि जिसको जिसका लक्षण कहा गया हो वह उसके किसी लक्ष्य में हो और किसी लक्ष्य में न हो। परन्तु कोई आत्मा चेतना रहित नहीं है।

www.vitragvani.com

यदि आत्मा का लक्षण रागादि कहें तो अव्याप्ति दूषण लगता है क्योंकि रागादिक संसारी जीवों में हैं, (परन्तु) सिद्ध जीवों में नहीं हैं। जो लक्षण लक्ष्य में हो और अलक्ष्य में भी हो उसे अतिव्याप्ति दूषण कहते हैं परन्तु चेतना जीव पदार्थ के अलावा किसी अन्य पदार्थ में नहीं पायी जाती। यदि आत्मा का लक्षण अमूर्तत्व कहें तो अतिव्याप्ति दूषण लगता है। कारण कि जिस तरह आत्मा अमूर्तिक है, उसी तरह धर्म, अधर्म, आकाश और काल भी अमूर्तिक हैं तथा जो प्रमाण में न आये उसे असम्भव कहते हैं। चेतना, जीव पदार्थ में, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण से जानी जाती है। यदि आत्मा का लक्षण जड़पना कहें तो असम्भव दोष लगता है, कारण कि यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। इस प्रकार तीनों दोष रहित आत्मा का चेतन लक्षण दो प्रकार है। एक ज्ञानचेतना और दूसरी दर्शनचेतना। जो पदार्थों को साकाररूप विशेषता से जाने उसे ज्ञानचेतना कहते हैं।

जो पदार्थों को निराकाररूप सामान्यता से देखे उसे दर्शनचेतना कहते हैं। यही चेतना परिणामों की अपेक्षा से तीन प्रकार की है। जब यह चेतना शुद्ध ज्ञानस्वभावरूप से परिणमन करती है तब ज्ञानचेतना, जब रागादि कार्यरूप से परिणमन करती है तब कर्मचेतना, और जब हर्ष-शोकादि वेदनरूप कर्म के फलरूप परिणमन करती है तब कर्मफलचेतना कही जाती है। इस प्रकार चेतना अनेक स्वांग करती है फिर भी चेतना का अभाव कभी नहीं होता। इस भाँति चेतना लक्षण से विराजमान जीव नामक पदार्थ को पुरुष कहते हैं। पुनः कैसा है पुरुष? 'स्पर्श रस गन्ध वर्णैः विवर्जितः' - स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित है। आठ प्रकार के स्पर्श, दो प्रकार की गन्ध, पाँच प्रकार का रस और पाँच प्रकार का वर्ण, ऐसे जो पुद्गलों के लक्षण हैं, उनसे रहित अमूर्तिक है। इस विशेषण से पुद्गल द्रव्य से भिन्नता प्रगट की। कारण कि यह आत्मा अनादिकाल से सम्बन्धरूप जो पुद्गल द्रव्य है उसमें अहंकार-ममकाररूप प्रवर्तन करता है। जो अपने चैतन्य पुरुष को अमूर्तिक जाने तो द्रव्यकर्म, नोकर्म, धन-धान्यादि पुद्गल द्रव्य में अहंकार-ममकार न करे।

पुनः कैसा है पुरुष? 'गुणपर्ययसमवेतः' - गुण-पर्यायों से विराजमान है अर्थात् द्रव्य है, वह गुण-पर्यायमय है अतः आत्मा भी गुण-पर्यायों सहित विराजमान है। वहाँ गुण का लक्षण सहभूत है। सह अर्थात् द्रव्य के साथ, भू अर्थात् सत्ता। द्रव्य में जो सदाकाल पाया जावे उसे गुण कहते हैं। आत्मा में गुण दो प्रकार के हैं। ज्ञान-दर्शनादि

www.vitragvani.com

असाधारण गुण हैं, वह अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्वादि साधारण गुण हैं, जो अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं। पर्याय का लक्षण क्रमवर्ती है। जो द्रव्य में अनुक्रम से उत्पन्न हो, कदाचित् – कोई वार हो उसे पर्याय कहते हैं। आत्मा में पर्याय दो प्रकार की हैं। जो नर–नारकादि आकाररूप अथवा सिद्ध के आकाररूप पर्याय है, उसे व्यंजनपर्याय कहते हैं। ज्ञानादि गुणों का भी स्वभाव अथवा विभावरूप परिणमन है, वह छह प्रकार से हानि–वृद्धिरूप है, उसे अर्थपर्याय कहते हैं। इन गुण–पर्यायों से आत्मा की तादात्मक एकता है। इस विशेषण से आत्मा का विशेष्य जाना जा सकता है।

पुनः कैसा है पुरुष? 'समुदयव्ययध्रौव्यैः समाहितः' – उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से संयुक्त है। नवीन अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय का उत्पन्न होना वह उत्पाद, पूर्व पर्याय का नाश होना वह व्यय और गुण–अपेक्षा अथवा द्रव्य–अपेक्षा से शाश्वत रहना वह ध्रौव्य है। जिस प्रकार सोना कुण्डल पर्याय से उत्पन्न होता है, कंकण पर्याय से नष्ट होता है तथा पीतादिक की अपेक्षा अथवा स्वर्णत्व की अपेक्षा सभी अवस्थाओं में शाश्वत है। इस विशेषण से आत्मा का अस्तित्व प्रगट किया।।९।।

गाथा ९ पर प्रवचन

अब, **ग्रन्थ प्रारम्भ...**

अब ग्रन्थ का वर्णन करते हैं। इस ग्रन्थ में पुरुष के अर्थ की सिद्धि का उपाय बतायेंगे। 'पुरुषार्थसिद्धि–उपाय'। पुरुष की सिद्धि। पुरुषार्थ – ऐसा है न? पुरुष के अर्थ की / प्रयोजन की सिद्धि के उपाय का व्याख्यान करेंगे। पुरुष के प्रयोजन का व्याख्यान करेंगे न? स्त्री के प्रयोजन का व्याख्या नहीं करे? पुरुष (का) अर्थ यहाँ, पुरुष की अर्थात् ही आत्मा। यहाँ पुरुष अर्थात् (आत्मा) यह अर्थ लेना है। यह कहते हैं। देखो!

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगन्धरसवर्णैः।
गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः।।९।।

पुरुष अर्थात् आत्मा। यहाँ तो पुरुष शब्द से आत्मा कहना है। स्त्री और पुरुष, यह तो कर्मजनित पर्याय है, यह कोई आत्मा नहीं। **पुरुष अर्थात् आत्मा 'चिदात्मा'**

www.vitragvani.com

चेतनास्वरूप 'अस्ति' है,.... देखो! महा सिद्धान्त उठाया है। भगवान आत्मा तो चेतनास्वरूप है। समझ में आया? पुरुष अर्थात् आत्मा, वह तो चेतनास्वरूप है। **'अस्ति' है,....** क्या नहीं? **स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित है,....** चेतनास्वरूप सहित है; स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहित है। अस्ति-नास्ति की है। पर से अकेला पृथक्, रूपी से पृथक् किया। समझ में आया? उसे उनका सम्बन्ध है नहीं।

'गुणपर्ययसमवेतः' कैसा है पुरुष आत्मा? **गुण और पर्याय सहित है,... 'गुणपर्ययसमवेतः'** सहित है, एक बात। इस-इसके ही तीन भेद किये। **'समुदयव्यय-ध्रौव्यैः'** संयुक्त है। **उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य....** उत्पाद-व्यय और ध्रुवसहित है। **युक्त है।** आत्मा की बात शुरु करने से पहले यह रखा — उत्पाद-व्यय और ध्रुव। उससे कितनेक वर्ष पहले पूछा कि उत्पाद-व्यय और ध्रुव सूत्र में कहाँ है? यह कोई प्रश्न आया नहीं हमारे। लो! स्थानकवासी... (संवत्) १९७९ में कहा — उत्पाद-व्यय और ध्रुव (यह) पाठ ३२ सूत्र में कहाँ है? इतना कहो। मूल इकहत्तर हजार श्लोक में कहाँ है? ऐसा प्रश्न आया नहीं। कहो, ठीक! हम समकिती तो बहुत अधिक हैं, अब चारित्र किसका निर्मल है - यह देखने आया हूँ, ठीक! समकित किसे कहना? कि तेरापन्थी को न माने और मूर्ति को न माने, वह समकित। जाओ! तेरापन्थी, इन स्थानकवासी के विरोधी है न! आहाहा!

यहाँ तो शुरुआत करते हुए पहली बात ली। समयसार में भी दूसरी गाथा ली **'जीवो'** उसमें... सात बोल लिये। टीका (में)। उत्पाद-व्ययसहित है, ध्रुव सहित है। सात बोल लिये हैं। शुरुआत से यह बात ली है। जीव कौन है? कैसा है?

टीका : 'पुरुषः चिदात्मा अस्ति' - पुरुष है, वह चैतन्यस्वरूप है। देखो! यह। ऐसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है — ऐसा कहा, परन्तु ऐसे पुरुष चैतन्यस्वरूप है — ऐसा कहकर, विकार रहित है - ऐसा साथ में कहा। समझ में आया? भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं तथा जिसमें पुण्य और पाप का राग भी नहीं, उसे पुरुष अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन कहा (है)। फिर यह व्याख्या लेंगे। समझ में आया?

www.vitragvani.com

अब, जरा इसकी व्याख्या। **'पुरुषः'** पुरुष में से निकाला अब। **'पुरु'** अर्थात् **उत्तम चेतना गुण में.... 'पुरु' उत्तम चेतना गुण में 'सेते' स्वामी होकर प्रवर्तन करे....** भाषा देखो! सहजात्म स्वरूप....

मुमुक्षु : शब्दकोष में है यह ?

उत्तर : हाँ, शब्दकोष में... उस शब्दकोष का ही यह स्वयं है कोष। यह आगम का रहस्य कोष है।

'पुरु सेते' पुरुष **'पुरु सेते''पुरु'** उत्तम चेतनागुण जिसका, ज्ञान-दर्शनगुण जिसका, उसमें **'सेते' स्वामी होकर प्रवर्तन करे....** सहजस्वरूप चैतन्य का स्वामी होकर प्रवर्ते, उसे पुरुष कहते हैं। राग और पुण्य तथा पर का स्वामी होकर प्रवर्ते, उसे पुरुष / आत्मा नहीं कहते। समझ में आया ? पुरुष उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा अपनी उत्तम चेतनाशक्तिरूप गुण, उसमें **'सेते'** — उसका स्वामी होकर - उसका मालिक होकर रहे, होकर प्रवर्ते। भगवान आत्मा शुद्ध चेतनास्वरूप उसका, उसमें एकाकार होकर, स्वामी होकर, मालिक होकर, अभेद होकर प्रवर्ते, उसका नाम पुरुष कहते हैं। लो! समझ में आया ? पुरुष की व्याख्या ही ऐसी ली है एकदम।

आत्मा, उसे पुरुष कहते हैं कि वह आत्मा चेतनास्वरूपसहित है। उस चेतनास्वरूप में जो स्वामी होकर अन्तर प्रवर्ते, वह पुण्य और पाप का, राग, कर्म और देहादि पर का स्वामी होकर प्रवर्ते नहीं। वे नकार (नास्ति) में जाते हैं। अपने चैतन्यस्वरूप का स्वामी होकर प्रवर्ते, उसे पुरुष कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

राग-विकल्प-व्यवहार-पुण्य आदि, ये कहाँ चेतनास्वरूप है ? ये चेतनास्वरूप नहीं, इसलिए ये कहाँ आत्मा है ? व्यवहार के विकल्प उठते हैं, रागादि के-व्यवहाररत्नत्रय के — वे कहाँ आत्मा है ? वे कहाँ चैतन्यस्वरूप है ? वे तो चैतन्यस्वरूप से रहित है। चैतन्यस्वरूपसहित तो आत्मा है। वह आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप में अन्तर मालिकरूप से-स्वामीरूप से परिणमे / प्रवर्ते। समझ में आया ? अर्थात् आत्मा चैतन्यस्वरूप जो उसका गुण है, उसके स्वामीपने, परिणतिरूप से परिणमे। समझ में आया ?

प्रवर्तन करे, उसको पुरुष कहते हैं। आत्मा अपने चेतना — दर्शन-ज्ञानचेतना;

www.vitragvani.com

उसमें स्वामी होकर, एकाकार होकर परिणति शुद्धपने परिणमे, उसे आत्मा कहते हैं, उसे पुरुष कहते हैं। 'जेतें जीव्याते हूँ जीत्यो पुरुष जीत्यो मुझ नाम' आनन्दघनजी में अजित भगवान की स्तुति में आता है। हे भगवान! 'अजीत जिनेश्वर प्रीतम मारो... अजित जिनेश्वर का। जो तें जीत्या रे, तेने हूँ जीत्यो' — प्रभु! आपने तो विकार को जीता, इसलिए आप पुरुष हो। मैं विकार से जीता गया, प्रभु! मैं पुरुष कैसे होऊँ? आहाहा! यहाँ जीतना, यह नास्ति से है। ऐसा न लेकर अपने स्वभाव का चैतन्य ज्ञान-दर्शनपना जो स्वभाव, उसमें आत्मा उसका स्वामी होकर अर्थात् उसका अर्थ कि उसमें अभेद होकर प्रवर्ते, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की... दर्शन-ज्ञान का स्वामी होकर प्रवर्ते, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति होती है। उसे पुरुष और आत्मा कहते हैं। वाह...! उसे दर्शन-ज्ञानस्वरूप, ऐसा चेतना भगवान आत्मा की, उसके साथ परिणमे, उसके साथ एकाकार होकर, उसके साथ सोये-प्रवर्ते। समझ में आया?

स्वामी होकर प्रवर्तन करे उसको पुरुष कहते हैं। सोये ऐसा कहीं लिया... सोता है। जैसे पुरुष, स्त्री के समीप में सोता है, वह तो नपुंसक है। भगवान आत्मा अपने चैतन्यपुर में, नगर में, भाव में, स्वभाव में प्रवर्तकर रहे, उसे पुरुष कहते हैं। ओहोहो! व्याख्या! अथवा जिसके समीप में तो शुद्धचेतना ही वर्तती है। रागादि से वह दूर वर्तता है, पुण्य-पाप के विकल्पों से दूर वर्तता है — ऐसा नास्ति से न लेकर, अस्ति से बात ली है। इनकी शैली है न? 'नमः समयसाराय' — ऐसा लिया है न? अस्ति से लिया है न? 'नमः समयसारायः' — वहाँ अजीव, आस्रव और बन्ध न लेकर, अकेला आत्मा, उसका गुण और संवर, निर्जरा, मोक्ष — ये अस्ति-तत्त्व लिये हैं। अमृतचन्द्राचार्य की शैली, गजब की शैली है।

'पुरुषः चिदात्मा अस्ति' वह अपने में स्वामी होकर सोये। चैतन्य के स्वरूप का स्वामी होकर, उसके साथ पोढ़े अर्थात् शुद्धपरिणति प्रगट करे। द्रव्य आत्मा, उसका चेतना शक्तिरूप गुण, उसका स्वामी होकर (प्रवर्ते)। इस राग का स्वामी होकर, पर का स्वामी होकर परिणमे, उसे आत्मा ही नहीं कहते - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान की सोड तो चैतन्यस्वरूप की है, कहते हैं। भगवान आत्मा चैतन्य-ज्ञान और

www.vitragvani.com

दर्शन का जो चेतनास्वभाव, उसे सोड में लेकर उसमें सोये और उसका परिणते करे, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! गजब व्याख्या, भाई! समझ में आया?

दिगम्बर मुनियों के एक-एक शब्द ही कोई अलग प्रकार के हैं। समझ में आया? श्रावकाचार का वर्णन करना है। उसके पहले आत्मा ऐसा, यह वर्णन करके उसकी सिद्धि का उपाय कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? अपने चेतन में... लो! भाई ने कहा पूर अर्थात् पूर, नगर ऐसा। अपना पूर-चैतन्य का पूर, चैतन्य का पूर चेतना। उसके नगर में सोये, अभेद होकर परिणति करे। आहाहा! उसे, कहते हैं कि हम पुरुष कहते हैं, उसे हम आत्मा कहते हैं। जो कोई पुण्य और पाप के विकल्पों को सोड में एकत्व होकर सोवे, उसे हम आत्मा नहीं कहते। आहाहा! कहो, शोभालालजी! यह तो समझ में आवे, ऐसी बात है, हों! गुजराती भाषा कोई ऐसी बहुत (कठिन) नहीं है। यह गुजराती कहीं ऐसी नहीं है; समझ में आये ऐसी है। सूक्ष्म पड़ता है इन्हें? पड़ता होगा। आहा...हा...!

ज्ञान, दर्शन, चेतना के नाथ को पुरुष कहते हैं। लो! ज्ञान। वह चेतना शब्द था न सामान्य? उसके दो भाग किये — ज्ञान और दर्शन। जानना और देखना — ऐसी जो चेतना, उसका नाथ जो आत्मा। है, उसका रक्षण करे और नहीं, उसे विशेष प्राप्त करे, उसे नाथ कहते हैं। जोगक्षेम का करनेवाला, उसे नाथ कहते हैं। प्राप्त चीज का रक्षण करे और अप्राप्त को मिला दे। ऐसे आत्मा अपना चेतनागुण जो दर्शन और ज्ञान, उनका वह नाथ है। उसकी शुद्धपरिणति, उसने अभेद में की है और अभी शुद्ध कम हो, उसे पूर्ण करेगा; इसलिए उस चेतना का नाथ, उसे आत्मा / पुरुष कहा जाता है। आहाहा! गजब व्याख्या भाई!

विकल्प आदि उत्पन्न हो, देहादि की क्रिया (हों), उनमें जो सोये अर्थात् एकाग्र हो, और 'ये मेरे' — ऐसा माने, उसे तो कहते हैं कि हम आत्मा ही नहीं कहते, उसे पुरुष ही कहते नहीं न! समझ में आया? ज्ञान, दर्शन जो उसका-चेतना का स्वभाव है, उसमें जो आत्मा उसका नाथ होकर वर्ते, उसे पुरुष कहते हैं। वह चेतना उसका लक्षण और गुण बराबर है। इसके अतिरिक्त उसका दूसरा लक्षण सच्चा नहीं है — ऐसा ये तीन दोषरहित बताकर सिद्ध करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)